केशवानंद भारती नरि्णय के 50 वर्ष

[illegible] 24/04/2023 [illegible] '[illegible]' [illegible] "50 years of Kesavananda Bharati judgment" [illegible] '[illegible]' [illegible]

संदर्भ

संविधान के '**मूल ढाँचे**' की अवधारणा का उद्भव 50 वर्ष पूर्व **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य** (1973) वाद के ऐतिहासिक नरि्णय में हुआ था।

मूल ढाँचे का सद्धिांत एक अत्यधकि ववििादास्पद बहुलवादी न्यायकि रचना है जसिे सरकार की सभी शाखाओं और भारत के नागरकिों द्वारा स्वीकार कयिा गया है।

केशवानंद भारती वाद ने असीमति संसदीय संप्रभुता पर अंकुश लगाया और संविधान की मूल पहचान को मान्यता देकर एक नया व्याख्यात्मक उद्यम शुरू कयिा, जसिे कसिी भी संविधान संशोधन से नष्ट नहीं कयिा जा सकता है।

आज मूल ढाँचे का सद्धिांत संवैधानकि **न्यायकि समीक्षा** का एक लगातार वकिास करता पहलू बन गया है।

क्या था केशवानंद भारती वाद?

- **केशवानंद भारती वाद (1973):**
  - इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने **गोलकनाथ वाद** में दयिे गए अपने नरि्णय के वरि्द्ध नरि्णय दयिा। इसने 24वें संशोधन अधनियिम की वैधता को बरकरार रखा और कहा कि संसद के पास कसिी भी मूल अधकिार को कम करने या आहरति करने का अधकिार है ।
  - इसके साथ ही, इसने संविधान का 'मूल ढाँचा' या 'मूल वशिेषताओं' का एक नया सद्धिांत प्रस्तुत कयिा।
  - इसने नरि्णय दयिा कि अनुच्छेद 368 के तहत संसद की संवैधानकि शक्ति इसे संविधान के 'मूल ढाँचे' में हस्तक्षेप करने या इसे बदलने में सक्षम नहीं बनाती है।
  - इसका अभपि्राय यह है कि संसद कसिी ऐसे मूल अधकिार को कम नहीं कर सकती या आहरति नहीं कर सकती जो संविधान के 'मूल ढाँचे' का अंग है।

मूल ढाँचे के सद्धिांत की पृष्ठभूमि में प्रमुख वाद

- **शंकरी प्रसाद नरि्णय 1951:**
  - आरंभ में न्यायपालकिा का वचिार था कि संसद की संविधान संशोधन शक्ति अप्रतबिंधति है क्योंकि यह संविधान के कसिी भी भाग में संशोधन कर सकती है, यहाँ तक कि यह अनुच्छेद 368 में भी संशोधन कर सकती है जो वस्तुतः संसद को संशोधनकारी शक्ति प्रदान करता है।
- **गोलक नाथ बनाम पंजाब राज्य 1967:**
  - सर्वोच्च न्यायालय ने संसद की शक्तयिों के प्रति एक नया दृष्टकिोण अपनाया कि वह संविधान के भाग III, अर्थात् मूल अधकिारों में संशोधन नहीं कर सकती और इस प्रकार मूल अधकिारों को एक 'उत्तमोत्तम स्थति' (Transcendental Position) प्रदान की।
- **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य 1973:**
  - इसमें एक ऐतहिासकि नरि्णय दयिा कि संसद संविधान के मूल ढाँचे में बदलाव या हस्तक्षेप नहीं कर सकती है।
  - यह माना गया कि यद्यपि संसद के पास संविधान में संशोधन करने की अबाधति शक्ति है, लेकनि यह संविधान के मूल ढाँचे या मौलकि वशिेषताओं के साथ छेड़छाड़ या उसे कमज़ोर नहीं कर सकती है क्योंकि इसमें केवल संविधान संशोधन की शक्ति निहिति है, न कि संविधान के पुनर्लेखन करने की।
- **इंदरिा नेहरू गांधी बनाम राज नारायण वाद:**
  - इस वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने 39वें संशोधन अधनियिम (1975) के एक उपबंध को अमान्य कर दयिा, जसिमें प्रधानमंत्री और लोकसभा

अध्यक्ष से संबद्ध निर्वाचन संबंधी विवादों को सभी न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया था।
  - न्यायालय के अनुसार, यह उपबंध संसद की संशोधन शक्ति से परे था क्योंकि यह संविधान के मूल ढाँचे को प्रभावित करता था।
- **मिनर्वा मिल्स बनाम भारत संघ:**
  - मिनर्वा मिल्स वाद में, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि "भारतीय संविधान की स्थापना मूल अधिकारों और निदेशक सिद्धांतों के बीच संतुलन के आधार पर की गई है।"
  - संसद निदेशक सिद्धांतों को लागू करने के लिये मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है, यदि यह संशोधन संविधान के मूल ढाँचे को आघात न पहुँचाता हो या उसे नष्ट नहीं करता हो।

मूल ढाँचे का सिद्धांत क्या है?

- केशवानंद भारती वाद में संविधान पीठ ने 7-6 के मत से निर्णय दिया कि संसद संविधान के किसी भी भाग में संशोधन कर सकती है यदि वह संविधान के मूल ढाँचे या आवश्यक विशेषताओं में कोई बदलाव या संशोधन को अधिभावी न करे।
- हालाँकि, न्यायालय ने 'मूल ढाँचे' पद को परिभाषित नहीं किया और केवल कुछ सिद्धांतों - जैसे संघवाद, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र आदि - को इसके अंग के रूप में सूचीबद्ध किया।
- तब से "मूल ढाँचे के सिद्धांत" को निम्नलिखित विषयों को संलग्न करने हेतु व्याख्यायित किया गया है -
  - संविधान की सर्वोच्चता,
  - विधि का शासन,
  - न्यायपालिका की स्वतंत्रता,
  - शक्ति पृथक्करण का सिद्धांत,
  - संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य,
  - सरकार की संसदीय प्रणाली,
  - स्वतंत्र एवं निष्पक्ष निर्वाचन का सिद्धांत,
  - कल्याणकारी राज्य, आदि।
- एस.आर. बोम्मई वाद (1994) मूल ढाँचे के अनुप्रयोग का एक प्रमुख उदाहरण है।
  - इस वाद में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद राष्ट्रपति द्वारा भाजपा सरकारों की बर्खास्तगी को न्यायालय ने उचित ठहराया, जहाँ इन सरकारों से धर्मनिरपेक्षता के लिये खतरे की बात कही गई।

मूल ढाँचे के सिद्धांत का महत्त्व क्या है?

- **राजनीतिक शक्ति को सीमित करना:**
  - गोलक नाथ वाद (1967) ने अनुच्छेद 368 की संशोधन शक्ति को मूल अधिकारों की व्यवस्था के अधीन लाकर राजनीतिक शक्ति की सीमा निर्धारित की।
  - मूल ढाँचे ने संविधान की मूल पहचान को चिह्नित किया, जिसे किसी भी संशोधन द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता है।
  - मूल ढाँचा संविधान के निरसन को अक्षम बनाता है और यह किसी संवैधानिक संशोधन को अधिकृत करती है, न कि संवैधानिक तोड़-मरोड़ या विघटन को।
- **न्यायिक समीक्षा प्रक्रिया और शक्ति का विवेकपूर्ण प्रयोग:**
  - केशवानंद भारती वाद का उभार सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सह-संविधायी शक्ति (Co-constituent Power) के विवेकपूर्ण प्रयोग के एक अवसर के रूप में हुआ।
  - इसने कार्यपालिका एवं विधायिका की वृहत पूर्ण शक्तियों को स्पष्ट किया और भय के तर्क को इस मान्यता के साथ खारिज कर दिया कि शक्ति के दुरुपयोग की संभावना इसकी अप्रदत्तता (Non-conferment) के लिये कोई आधार नहीं है।
- **अंतिम निर्णय का अधिकार सर्वोच्च न्यायालय के पास:**
  - न्यायालय मानता है कि मूल सिद्धांतों की पहचान करना और उन्हें बनाए रखना उसका उत्तरदायित्व है, जो संविधान की अखंडता को बनाए रखने के लिये महत्त्वपूर्ण है।
  - NJAC वाद (2015) में दिया गया निर्णय यह स्पष्ट करता है कि शक्ति का प्रयोग केवल "विधि के मापदंडों के भीतर, न तो अधिक और न ही कम" किया जा सकता है और संशोधनों की वैधता "विचारों के आधार पर परीक्षित नहीं की जा सकती है, वे कितनी भी प्रबलता या विशिद रूप से अभिव्यक्त हुए हों।"
  - न्यायिक स्वतंत्रता विधि के शासन के 'सार' (Essence) के रूप में महत्त्वपूर्ण है, जो 'निर्णयात्मक स्वायत्तता' और 'संस्थागत स्वायत्तता' दोनों को शामिल करती है।
- संवैधानिक परंपराएँ और अभ्यास:
  - विधि के शासन का अर्थ है कि "निर्णयन और विवेक के मानदंड" हमेशा संविधान द्वारा परिचालित रहते हैं और 'संवैधानिक परंपराओं' के लिये सम्मान की मांग रखते हैं।
  - भारत के मुख्य न्यायाधीश के अनुसार न्यायिक नियुक्तियों के मामलों में एक परंपरा भारत सरकार अधिनियम, 1935 के समय से ही मौजूद

है।
- ‘संवैधानिक परंपराएँ और अभ्यास’ लिखित शब्द के साथ अलिखित संविधान के प्रतिच्छेदन को चिह्नित करते हैं।

संबद्ध मुद्दे

- **स्पष्ट उपबंध नहीं:**
  - मूल ढाँचे के सिद्धांत का सबसे सामान्य मुद्दा यह है कि संविधान की भाषा में इस सिद्धांत के लिये कोई आधार नहीं है।
  - ऐसे किसी उपबंध का अभाव है जो यह निर्धारित कर सकता हो कि संविधान में संशोधन शक्ति की क्षमता से परे कोई मूल ढाँचा मौजूद है।
- **शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के विरुद्ध:**
  - यह सिद्धांत एक त्रिपक्षीय प्रणाली की कल्पना करता है जहाँ शक्तियों को उनके अधिकार क्षेत्र को रेखांकित करते हुए सरकार के तीन अंगों के बीच प्रत्यायोजित एवं वितरित किया जाता है।
  - यह शक्ति के पृथक्करण की अवधारणा के साथ असंगत है।
- **विषय-वस्तुगतता या ‘सब्जेक्टिव मैटर’:**
  - यह देखा गया है कि मूल ढाँचे के सिद्धांत को अलग-अलग न्यायाधीशों द्वारा उनकी व्यक्तिपरक संतुष्टि के आधार पर अलग-अलग तरीके से परिभाषित किया जाता है।
  - यह संवैधानिक संशोधनों की वैधता या अमान्यता को तय करने के निर्णय को न्यायाधीशों की व्यक्तिगत प्राथमिकताओं से प्रभावित करता है जो तत्समय संविधान में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त कर लेते हैं।
- **निर्वाचित संसद की शक्तियों पर सीमाओं का आरोपण:**
  - संसद द्वारा अधिनियमित कानून को न्यायालयों द्वारा अमान्य घोषित किया जा सकता है यदि न्यायालय इसे संविधान के मूल ढाँचे के विरुद्ध मान लें।
  - इस प्रकार, यह न्यायपालिका को लोकतांत्रिक तरीके से गठित सरकार पर अपना दर्शन थोपने की अनुमति प्रदान करता है।
- **कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं:**
  - मूल ढाँचा के संघटक तत्व के बारे में निश्चित स्पष्टीकरण की कमी है, जिससे यह सिद्धांत संदिग्ध या अस्पष्ट हो जाता है।
  - यह तय करना न्यायालयों के ऊपर है कि मूल ढाँचा क्या है?
- **न्यायिक अतिरेक की ओर:**
  - राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC) को सर्वसम्मति से संसद द्वारा संविधान में संशोधन के रूप में अधिनियमित किया गया था और भारत के 28 में से 20 राज्यों की विधायिका द्वारा इसे पारित किया गया था।
  - NJAC विधेयक एवं ऐसे कई अन्य मामलों में न्यायालय द्वारा मूल ढाँचे के सिद्धांत के आधार पर हस्तक्षेप किया गया जिन्हें न्यायिक अतिरेक (Judicial Overreach) की घटनाओं के रूप में देखा गया है।

निष्कर्ष

- मूल ढाँचे के सिद्धांत भारतीय संविधान की आधारशिला है, जो लोकतंत्र के मौलिक सिद्धांतों के संरक्षण और नागरिकों के अधिकारों की रक्षा सुनिश्चित करने में सहायक रहा है। केशवानंद भारती वाद में इसकी प्रस्थापना भारत के लोकतांत्रिक संस्थानों की सशक्तता और प्रत्यास्थता तथा संविधान को बनाए रखने हेतु न्यायपालिका की प्रतिबद्धता का एक वसीयतनामा है।

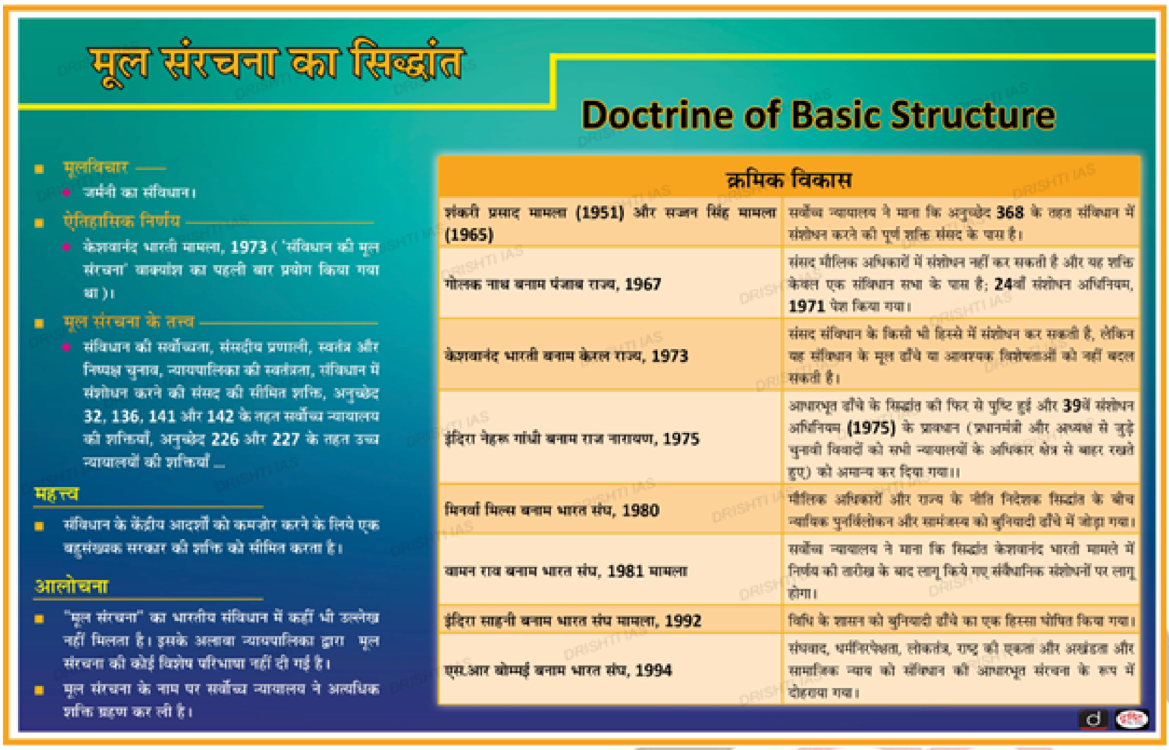

अभ्यास प्रश्न: भारत के संवैधानकि न्यायशास्त्र में मूल ढाँचे के सद्धिांत के महत्त्व और वकिास की चर्चा करें। इसने शक्तपिृथक्करण के सद्धिांत को और व्यक्तगित स्वतंत्रता की सुरक्षा सुनश्चिति करने तथा वधिकि शासन को बनाए रखने में न्यायपालकि की भूमकि को कैसे प्रभावति कयिा है?

UPSC सविलि सेवा परीक्षा वगित वर्ष के प्रश्न (PYQ)

□□□□□□□□□□

प्रश्न: नम्निलखिति कथनों पर वचिार कीजयि:

1. भारत के संवधिान के 44वें संशोधन द्वारा लाए गए एक अनुच्छेद ने प्रधानमंत्री के नर्वािचन को न्यायकि पुनर्वलिोकन के परे कर दयिा।
2. भारत के संवधिान के 99वें संशोधन को भारत के उच्चतम न्यायालय ने अभखिंडति कर दयिा क्योंकयिह न्यायपालकि की स्वतंत्रता का अतक्रिमण करता था।

उपर्युक्त में से कौन-सा/से कथन सही है/हैं?

(a) केवल 1

(b) केवल 2

(c) 1 और 2 दोनों

(d) न तो 1, न ही 2

उत्तर: (b)

□□□□□

प्र. "संवधिान का संशोधन करने की संसद की शक्तएिक परसिीमति शक्तहिै और इसे आत्यंतकि शक्तकि रूप में वसि्तृत नहीं कयिा जा सकता है।" इस कथन के आलोक में व्याख्या कीजयि कि क्या संसद संवधिान के अनुच्छेद 368 के अंतरगत अपनी शक्तकिा वशिदीकरण करके संवधिान के मूल ढाँचे को नष्ट कर सकती है? **(2019)**

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/50-years-of-kesavananda-bharati-judgment